औपनिवेशिक भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रभाव

कंचन कुमारी
शोधार्थी, इतिहास विभाग
ति0 मा0 भा0 वि0 वि0, भागलपुर, (बिहार)
ईमेलः archusingh088@gmail.com

सारांश

अंग्रेजों ने सभ्यतागत श्रेष्ठता के अपने दावों और बर्बर भारतीय समाज को सभ्य बनाने के अपने मिशन के लिए शिक्षा को एक महत्वपूर्ण उपकरण की तरह इस्तेमाल किया। इतिहास की खोज के माध्यम से पहले तो उन्होंने भारत को असभ्य साबित किया और उसके बाद उन्हें सभ्यता बनाने के दावों के तहत 'अंग्रेजी शिक्षा', प्रशासनिक और वैधानिक ढाँचे को यहाँ लागू किया। औपनिवेशिक शासन जिसे देसी समुदाय को सभ्य बनाने की प्रक्रिया मान रही थी, दरअसल वह अपने शासन को सुदृढ़ और स्थायी बनाने की राजनीति थी। 'अंग्रेजी शिक्षा' से अर्थ वहाँ केवल अंग्रेजी भाषा में दी जाने वाली शिक्षा भर नहीं है। इसका संबंध देसी भाषाओं में अनुदित विद्यालयी पाठयक्रम के तहत पढ़ाई जाने वाली सामग्री अर्थात् शिक्षा की अंतर्वस्तु से भी है। अंग्रेजी शासन के सभ्यतागत श्रेष्ठता के दावों को साबित करने लायक विचारधारात्मक आधार तैयार करने में औपनिवेशिक शिक्षा नीति की निर्णायक भूमिका रही, जिसका उद्देश्य था 'प्रजा जन' के चिंतन के तरीकों को बदलना और राज्य सत्ता से व्यवहार बर्ताव के तौर–तरीकों को सीखना। इसके तहत भारतीय समाज के सांस्कृतिक–राजनीतिक मान–मूल्यों को बदलने के प्रयास हुए।

मुख्य शब्दः *शिक्षा नीति, देसी ज्ञान, एजुकेशन डिस्पैच, उपयोगितावादी सिद्धांत।*

प्रस्तावना

अंग्रेजों की शिक्षा संबंधी नीतियों और उनके कार्यान्वयन के कई दौर चले। अंग्रेजी शिक्षा नीति पर विचार करते व्यक्त सबसे पहले विचारकों को 1820–1830 के बीच शिक्षा के माध्यम को लेकर चले विवादों की याद आती है। अठारहवीं सदी में अंग्रेजी शासन ने पौर्वात्यवादी विचारकों के देसी भाषा में ज्ञान के प्रसार की नीति को स्वीकार करते हुए 'कलकत्ता मदरसा' और 'संस्कृत कॉलेज' की स्थापना की थी, परंतु शिक्षा को लेकर अठारहवीं सदी के दूसरे तीसरे दशक के बीच चली बहस में पौर्वात्यवादियों की 'देसी भाषा में देसी ज्ञान' की शिक्षा संबंधी धारणा को परास्त होना पड़ा। 1835 में अंग्रेजी की उच्चतर शिक्षा की एकमात्र भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया।[1] हालाँकि पौर्वात्यवादियों का जोर 'देसी भाषा में देसी ज्ञान' देने पर था, लेकिन इस नीति के तहत खोले गए शैक्षिक संस्थान भी भारत में अब तक मौजूद पारंपरिक शिक्षा प्रणाली

से सर्वथा भिन्न थे। बर्नार्ड कोहन ने अठारहवीं सदी के अंतिम दशकों में कलकत्ता और बनारस में स्थापित कॉलेजों की संरचना के बारे में लिखा है – ''अंग्रेजों ने षिक्षा को 'संस्थान' में घटित होने वाली परिघटना माना। इसका मतलब था एक इमारत जो स्वयं कई खाँचों में बंटी हो और एक कक्षा के विद्यार्थियों को दूसरी कक्षा के विद्यार्थियों से अलग करती हो, साथ ही शिक्षक को विद्यार्थियों से अलगाती हो।''

ज्ञान की सुनिश्चित राशि को विद्यार्थी ने कहाँ तक हस्तगत किया है – इसको मापने के लिए नियमित अंतराल में परीक्षा लेनी पड़ती थी। इस प्रक्रिया का अंत होता था। पारितोषिक विवरण और छात्र को प्रमाण पत्र देने से, जो इस बात को अभिप्रमाणित करता था कि छात्र ने एक खास ज्ञान राशि अर्जित कर ली है।[2] कलकत्ता मदरसा और संस्कृत कॉलेजों की स्थापना देसी ज्ञान को बढ़ावा देने के लिए की गई थी, लेकिन इस देसी ज्ञान राशि को संगठित करने के जो प्रयास किये गये, वे अपनी प्रक्रिया में विदेशी थे। इस तरह अंग्रेजों का शैक्षिक ढ़ाँचा भारतीय समाज के परम्परागत शैक्षिक ढ़ाँचे से बिल्कुल अलग था। सुरेशचंद्र घोष ने अपनी पुस्तक 'द हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन मार्डन इंडिया' में इस विषय पर विस्तार से चर्चा की है। औपनिवेशिक शासन द्वारा शिक्षा में हस्तक्षेप करने से पहले हिन्दुओं के यहाँ शिक्षा पर ब्राह्मणों का कब्जा था। विद्वान ब्राह्मण, देश के अलग–अलग हिस्सों से छात्रों को एकत्र कर गुरूकुल में शिक्षा दिया करते थे। इन्हें राजा का संरक्षण प्राप्त होता था। मुस्लिमों के शिक्षा के केंद्र मदरसा हुआ करते थे। हिंदू शिक्षण संस्थाओं की तुलना में इनकी संख्या बहुत कम थी और ये कानून अधिकारियों को प्रशिक्षित करने के खास मकसद से बने थे।[3] कानून के अलावा मदरसों में शास्त्र, साहित्य, व्याकरण, तर्क, प्राकृत दर्शन, गणित का भी ज्ञान दिया जाता था। शिक्षण की अवधि आमतौर पर दस से बारह साल हुआ करती थी। उस समय के शिक्षण संस्थाओं में राजनीतिक अर्थों में धार्मिक विभेद नहीं था और मदरसों में हिन्दू छात्र भी ज्ञान प्राप्त किया करते थे।

यह तो थी उच्चतर शिक्षा की बात। प्राथमिक शिक्षा के लिए गाँवों में पाठशाला और मकतब हुआ करते थे, जहाँ गुरू जी और मौलवी साहब अपने क्षेत्र के बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा दिया करते थे। ये विद्यालय राज्य की ओर से आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं थे और ये पूरी तरह से लोगों की आर्थिक उदारता के सहारे संचालित हुआ करते थे। इन विद्यालयों की पाठ्यचर्या में पढ़ना, लिखना और गणित का मौखिक ज्ञान शामिल होता था। मुद्रित किताब नहीं हुआ करती थी और स्थानीय स्तर पर तैयार किये गये स्लेट और पेन्सिल छात्रों के एकमात्र शैक्षिक यंत्र हुआ करते थे। कोई भी छात्र कभी भी विद्यालय में दाखिला ले सकता था और अपनी आवश्यकतानुसार के लायक शिक्षा प्राप्त करने के बाद विद्यालय छोड़ सकता था। अंग्रेजों से पहले उच्च शिक्षा का प्रबंध केवल साहित्य, दर्शन और धर्म के विषयों में ही था। इन विषयों की उच्च शिक्षा हिन्दुओं को संस्कृत भाषा में और मुसलमानों को अरबी–फारसी भाषा में दी जाती थी। पढ़ाए जाने वाले विषयों में धार्मिक शास्त्र, व्याकरण, तर्कशास्त्र, प्राचीन ग्रंथ के अलावा विधि संहिताएँ थी।[4]

औपनिवेशिक भारत में अंग्रेजों द्वारा शिक्षा–व्यवस्था में किए गए ढ़ाँचागत परिवर्त्तनों के विभिन्न दौर चले। अंग्रेजी शिक्षा का भारत में प्रवेश सन् 1813 में पारित चार्टर एक्ट के जरिए

होता है, जिसमें कंपनी के अधिकारों को बीस सालों के लिए अनुमोदित किया गया था। इस एक्ट के कारण कंपनी ने 'देसी प्रजा' की शिक्षा की दिशा में कदम बढ़ाए और मिशनरी गतिविधियों के लिए भी छूट मिल गई। इस एक्ट में एक जगह कहा गया थाा कि 'कम–से–कम' एक लाख रूपये सालाना अरबी, फारसी, संस्कृत के साहित्य के पुनरूत्थान और सुधार तथा शिक्षित जनों को बढ़ावा देने के लिए खर्च किये जायेंगे।[5] यह फैसला पौर्वात्यवादियों के प्रभाव से लिया गया था, जो कि हिन्दुस्तान की शास्त्रीय भाषा और साहित्य को सभ्यता का प्रतिमान मानते थे।

शिक्षा की इन नीति की कड़ी आलोचना का दौर 1820–1830 तक चला। तब जाकर 1835 में अंग्रेजी को उच्चतर शिक्षा की एकमात्र भाषा के रूप में स्वीकार किया गया। 1835 में अपनाई गई शिक्षा नीति 1854 तक असफल साबित हो चुकी थी। 1835 में कंपनी का ख्याल था कि कुछेक पढ़े–लिखे तैयार हो जायें तो ये अपने–अपने समुदाय को शिक्षित करने का प्रयास करेंगे। सर चार्ल्सवुड के 'एजुकेषन डिस्पैच' के आधार पर इसी कारण एक समग्र शिक्षा–व्यवस्था अपनाने की बात सोची गई और प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा–व्यवस्था का ताना–बाना बुना गया। इस 'डिस्पैच' में निजी संगठनो को साथ लेकर 'अनुदान' के सहारे शिक्षा प्रणाली के विस्तार की बात सुझाई गई थी। इस पद्धति ने एक बड़ी नौकरशाही को जन्म दिया शिक्षण–संस्थान के कामकाज की निगरानी, अनुदान की संस्तुति और उसके आवेदनों पर विचार, पाठ्य पुस्तकों की तैयारी और परीक्षण आदि के काम ने शिक्षा के क्षेत्र में एक विशाल नौकरशाही को जन्म दिया।[6]

अंग्रेजी शिक्षा के विभिन्न दौर में हुए इन संस्थागत परिवर्त्तनों में शिक्षा की प्रविधियों और उद्देश्यों को लेकर बहस–मुबाहिसें होते रहे, लेकिन ये सारी कवायदे थी, सभ्यतागत सुधार का ही हिस्सा। उदाहरण के लिए पौर्वात्यवादियों की शिक्षा विषयक धारणा के अंतर्गत 'कलकत्ता मदरसा' और 'हिन्दू कॉलेज' खोले गये थे। वारेन हेस्टिंग्स के समय स्थापित इन संस्थानों का उद्देश्य स्वयं हेस्टिंग्स के शब्दों में ही यह था – ''हमारे द्वारा उनके साहित्य को बढ़ावा देने से हमारे बारे में देसी लोगों के मन पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

शिक्षा के ढ़ाँचागत बदलाव से शिक्षा के उद्देश्यों में अमूल परिवर्त्तन हुआ। भारतीयों को शिक्षित करने के पीछे औपनिवेशिक शासन का मकसद अपने शासन के स्थायित्व और सुदृढ़ीकरण के लिए भारतीय समाज की अव्यवस्था को विधि–आधारित समाज–व्यवस्था में बुद्धिजन्य संरचना अर्थात् एक संगठनिक चरित्र प्रदान करना था। सन् 1792 में ग्रांट ने एक पुस्तिका लिखी, जिसमें उसने भारतीय जनता को अंग्रेजी में धार्मिक शिक्षा देने की पुरजोर वकालत की थी। उसने लिखा था – ''अंधेरे का सच्चा निदान है प्रकाश, हिन्दू अज्ञानी हैं और इसी कारण गलती करते हैं। कभी भी उनकी गलतियों को उनके आगे साफ–साफ रखा नहीं गया। हमारे प्रकाश और ज्ञान का उनके बीच संचार हो तो यह उनकी अव्यवस्था का सबसे अच्छा उपचार साबित होगा और इस उपचार पर पूरे विश्वास के साथ अमल किया जाना चाहिए क्योंकि पूरी ईमानदारी और धीरज के साथ इस पर अमल किया गया तो इसका उन पर बड़ा खुशगवार

असर होगा जो हमारे लिए प्रतिष्ठा के साथ–साथ साहसिकता की भी बात होगी।[7]

बेंटिक उपयोगितावादी सिद्धांतों में विश्वास करने वाले थे और अपने गवर्नर जनरल बनने पर उन्होंने इंग्लैंड में ही मिल की भारत संबंधी व्याख्या और समझ के मार्गदर्शन में शासन करने की उद्घोषणा कर दी थी। उसने मिल से कहा था ''ब्रिटिश भारत तो मैं जा रहा हूँ, लेकिन गवर्नर जनरल मैं नहीं रहूँगा। गवर्नर जनरल तो आप रहेंगे।''[8] ये वही मिल है, जिसने पौर्वात्यवादियों की भारत संबंधी शिक्षा–नीतियों को खारिज करने के हर संभव प्रयास किये थे और उसे इसमें सफलता भी हासिल हुई थी। 'एक्जामिनर ऑफ कॉरसपॉन्डेंस' के पद पर रहते हुए गवर्नर जनरल बंगाल को भेजे एक डिस्पैच में उसने 'कलकत्ता मदरसा' और 'हिन्दू कॉलेज' की दशा की ओर ध्यान दिलाते हुए आरोप लगाया था कि 'सरकार अपने उद्देश्य 'उपयोगी शिक्षा' को बढ़ावा देने में असफल हो रही है।' मिल का सवाल था कि पूरब का साहित्य क्या इतना अनमोल है कि उसके लिए कॉलेज खोला जाय, क्योंकि ''साहित्य–संवर्द्धन के लिए कॉलेज नहीं खोले जाते और न ही इससे यह सुनिश्चित होता है कि उपयोगिता के लक्ष्य को प्राप्त करने में यह साहित्य प्रभावकारी है।''[9] इन डिस्पैच में मिल ने 'कंपनी सरकार' को 'उपयोगी ज्ञान' के प्रसार के लिए हरसंभव प्रयास करने और पौर्वात्यवादी शिक्षा की भ्रान्त धारणा को तत्काल त्याग देने का आदेश दिया था।

उपयोगितावादी हो या सुधर्मवादी, दोनों ही के प्रभाव में औपनिवेशिक भारत में चली शैक्षिक योजनाओं ने देसी मध्यवर्ग को गढ़ने में महती भूमिका निभाई। बालकृष्ण भट्ट ने स्वयं तो मिशनरी स्कूल में पढ़ाई की ही थी, कुछ समय के लिए उसने अध्यापन का भी कार्य किया था। बाद में धार्मिक विवाद के चलते उन्होंने अध्यापन का कार्य छोड़ दिया। मिशनरी स्कूल में अध्ययन–अध्यापन से उनके मन में मिशनरियों द्वारा प्रेरित ईसाइयत के प्रचार–प्रसार और धर्म परिवर्तन की नीति की गहरी आलोचना पैदा हो गई थी। उनके सहपाठी गंगाराम के ईसाई धर्म स्वीकार कर लेने की भी तीखी प्रतिक्रिया उनके व्यक्तित्व में देखी जा सकती है। वह अंग्रेजी शिक्षा के कड़े आलोचक थे और उनका दृढ़ विश्वास इस विचार में था कि देश की उन्नति के लिए 'जातीय शिक्षा' अनिवार्य है। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा द्वारा युवकों को बेकार किये जाने और केवल किरानीगिरी के लायक रह जाने की निंदा करते हुए लिखा है – ''आजकल बहुधा यही देखा जाता है कि जो नवयुवक स्कूल या कॉलेजों को छोड़ कर अपनी शिक्षा समाप्त कर निकलते है वे ऐसे कमजोर हो जाते है कि केवल इसी लायक रह जाते है कि किरानीगिरी या ड्राइवरी कर किसी तरह अपना कुटुम्ब पाल सकें। ऐसी शिक्षा जिससे हम लोगों में जातीयता का भाव पैदा हो सके गवर्नमेंट के शिक्षा विभाग में दी ही नहीं जाती। इतना ही नहीं यहाँ के शिक्षा विभाग का ढ़ंग ही निराला है। जिससे हमको लाभ की अपेक्षा हानि अधिक है।''[10]

अंग्रेजी शासन की बहुत सी मान्यता प्राप्त और कारगर स्थानीय संस्थाओं और कानूनों के चलते भारत में अंग्रेजों की स्थिति इतर थी। यहाँ शासन करने के लिए अपनी प्रशासनिक व्यवस्था की समझ को भारतीय वैद्यानिक परिपाटी के अनुसार दुरूस्त और विकसित करना

अनिवार्य हो गया था। दूसरी ओर भारत के कई स्थानीय कानून के समकक्ष कोई कानून ब्रिटेन की कानून व्यवस्था में मौजूद नहीं था।[11] भारतीय शासकीय कानून की भाषा – संस्कृत और फारसी का पूर्ण अज्ञान इन संभ्रमों को और भी बढ़ाने का काम कर रहा था। भारत की ये सभ्यतागत विशेषताएँ अंग्रेजों के लिए यहाँ शासन करने की स्थितियों को दुष्कर बनाती थी। यह बात ईस्ट इंडिया कंपनी को बखूबी समझ आ गई थी। अब तक उन्हें यह स्पष्ट हो चुका था कि परंपरा, स्थानीय प्रथाओं और दस्तूरों के बेहतर ज्ञान के साथ–साथ देसी लोगों की विश्वसनीयता वैद्यानिक पुस्तकों के ज्ञान के बिना भारतीय भौगोलिक क्षेत्र पर शासन नहीं किया जा सकता है।

इस जरूरत को समझते हुए औपनिवेशिक शासकों ने विद्वानों की एक ऐसी नस्ल तैयार की जो भारतीय यथार्थ की समझ विकसित कर भारत के शासन और शोषण में उन्हें सक्षम बना सके। विद्वानों की इस जमात को पौर्वात्यवादी कहा गया जिन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप की भाषाओं में महारथ हासिल कर ली थी और शासन में मददगार इन भाषाओं की मूल पुस्तकों के अनुवाद के काम को अंजाम दिया था। इस दिशा में पहला प्रयास सफल व्यापारिक एजेंट और बाद में 1772 में भारत के गवर्नर जनरल बने वारेन हेस्टिंग्स ने की थी। उन्होंने युवा अंग्रेज अधिकारियों के एक समूह को संस्कृत, फारसी और अरबी सरीखी प्राचीन भारतीय भाषाओं के अध्ययन के लिए प्रेरित किया।

निष्कर्ष

भारत में अंग्रेजी शिक्षा आरंभ के पीछे कई आशय थे और इन्हीं कारणों से उसके प्रसार को लगातार बढ़ावा दिया गया। ईसाई मिशनरी मानते थे कि शिक्षा से भारतीयों के धर्म परिवर्तन के रास्ते खुलेंगे। उपयोगितावादियों के लिए यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विस्तार करने में अत्यंत सहायक थी। अंग्रेजी शिक्षा एक ऐसा माध्यम बन गई जिसके द्वारा निचले स्तर के प्रशासनिक पदों पर नियुक्त भारतीयों को प्रशिक्षित किया जाने लगा। इस प्रकार साम्राज्यवाद की इस शैक्षणिक परियोजना का उद्देश्य भारतीय प्रजा में उपनिवेशी शासन के लिए निष्ठा की भावना उत्पन्न करना था कि वे उसकी प्रभु द्वारा निर्धारित प्रकृति में और उसके सभ्यता–प्रसाद के उद्देश्य में यकीन करें। अंग्रेजी शिक्षा के प्रमुख समर्थक जैसे बी. टी. मेककली ने बहुत पहले ही तर्क दिया था कि अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीय युवकों को ऐसे विचारों से सम्पर्क कराया है जो खुलकर ऐसी अनेक बुनियादी मान्यताओं को चुनौती देते थे जिन पर परम्परागत जीवनमूल्यों का आधार टिका हुआ था। इन नये विचारों ने शिक्षित भारतीयों के एक ऐसे बुद्धिवादी वर्ग को जन्म दिया जिन्होंने अपने समाज को एक ऐसी विचारधारा के मूल्यों पर परखना शुरू कर दिया जिसका आधार बुद्धि, उपयोगिता, प्रगति और न्याय था। अब भारत में एक ऐसा नागरिक समाज विकसित हो चुका था जो अपनी पहचान को एक भारतीय परंपरा के दायरे में स्थापित करते हुए अपने अधिकारों की रक्षा के लिए बहुत जागरूक थे। इस लिए इस नवचेतना को भारतीय समाज में फैली सभी कुरीतियों और बुराईयों की समाप्ति के लिए आवश्यक माना गया।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. कोहन, बर्नाड एस. द बर्नाड कोहन ओमनीबस में बर्नाड कोहन का लेख – *द कमांड ऑफ लैंग्वेज एण्ड द लैंग्वेज ऑफ कमांड,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2004, पृ0 – **16–56**
2. घोष, सुरेशचंद्र, द हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन माडर्न इंडिया : 1757–1986, ओरियंट लांगमैन, नई दिल्ली, 1995, पृ0 – **104**
3. वही, पृ0 – **148**
4. वही, पृ0 – **155–56**
5. विश्वनाथन, गौरी, मास्क ऑफ कंक्वेस्ट : लिटरेरी स्टडी एंड ब्रिटिश रूल इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1989, पृ0 – 38–39
6. अवस्थी एवं अवस्थी, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, नई दिल्ली, 1976, पृ0 – **85–86**
7. वही, पृ0 – **89**
8. राय, हिमांशु (संपा), भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद एक अध्ययन हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2003, पृ0 – 202